ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-10* January-2021
Anthology : The Research

साधो देखो जग बौराना
(संत साहित्य में प्रगतिशील दृष्टि)
Sadho Dekha Jag Borana
(Progressive Vision in Saint Literature)

Paper Submission: 15/01/2020, Date of Acceptance: 26/01/2020, Date of Publication: 27/01/2021

शशिकला राय
सह.प्राध्यापक
हिंदी विभाग,
सावित्रीबाई फुले पुणे
विश्वविद्यालय,
पुणे, महाराष्ट्र, भारत

सारांश

संत साहित्य के प्रदेय प्रासंगिकता और पुनर्मूल्यांकन के दृष्टिकोण की गहन विवेचना इस शोध आलेख का प्रमुख उद्देश्य है । अध्ययन अध्यापन की परिपाटी में इस तरह की विवेचना समय विशेष के समाज और संस्कृति को समझने में विशेष रूप से सहायक होता है । संत साहित्य अपने समय के लोक चित्त का इंद्रधनुष है। इसकी पुनर्व्याख्या इसे अग्रगामी बनाने की ही एक कड़ी है ।

An in-depth discussion of the deliverable relevance of saint literature and its approach to reevaluation is the major objective of this research article. This type of investigation is particularly helpful in understanding the society and culture of the time in the practice of teaching. Saint literature is the rainbow of the folk mind of its time. Its reinterpretation is a link to make it pioneer.

मुख्य शब्द : संत साहित्य, भक्तिकाल, सामाजिक संदर्भ, समाज प्रबोधन, कबीर, पुनर्मूल्यांकन, हिंदी साहित्य, आलोचना परंपरा, सगुण, निर्गुण, मुगल शासक, इस्लाम का प्रचार प्रसार।

Sant Literature, Devotional, Social Context, Social Enlightenment, Kabir, Revaluation, Hindi Literature, Criticism Tradition, Sagun, Nirgun, Mughal Ruler, Spread Of Islam.

प्रस्तावना

आज हम घोर यंत्रेश्वर युग में जी रहे हैं। भूमंडलीकरण आतंकवाद, परमाणु परीक्षण की दृष्टि से भी हमारी प्रगतिशीलता को संशय के घेरे में नहीं खड़ा किया जा सकता। हां आध्यात्मिक गति को नापने का कोई प्रगतिशील मापक यंत्र नहीं है, हमारे पास। व धार्मिक गुरूओं का टोटा आज भी नहीं है। ऐसे में मध्यकालीन संतों के पास लौटते हैं बार – बार ? क्या धर्म और अध्यात्म की तलाश में शायद नहीं क्यों कि ये उन अर्थों में ये धर्मगुरू भी नहीं। दरअसल संत साहित्य के मूल्यांकन की हैसियत हम नहीं रखते। हम सब संत साहित्य से कुछ पाने की उम्मीद में जाते हैं। एक भी व्यक्ति निराशा, वेदना, अपमान, लांक्षन के दलदल से यदि संत साहित्य की बांह पकड़कर उबरता है और अपने सम्मान की रक्षा कर पाता है तो संत साहित्य की सार्थकता सिध्द हो जाती है। गंगा की महानता उसकी प्राचीनता में नहीं है बल्कि उसकी उस निरतंर प्रवाहमान स्थिति में है जो उसे हर समय के लिए उपादेय बनाये रखती है। संत साहित्य भी समय के साथ कदम मिलाकर चलता है। संत साहित्य में प्रगतिशील दृष्टि को सामाजिक राजनीतिक आर्थिक और धार्मिक परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की गई है। इसे चार शीर्षकों में समेटा गया है –

1. अपने घर का परदा कर लीजै। (सामाजिक)
2. हरि हैं राजनीति पढ़ आएं। (राजनीति)
3. नहीं दरिद्र समदुख जग मांही। (आर्थिक)
4. मैं कहता सुरझावन हारी। (धार्मिक)

अध्ययन का उददेश्य

संत साहित्य और इसके प्रमुख संतों को नये परिप्रेक्ष्य में विवेचित करने का प्रयास ।

अपने घर का परदा कर लीजै

कहा जाता क्या है कि संतों ने स्वांत रू सुखाय रचना की तुलसीदास को इतनी लोकप्रियता दिला सकती थी ? तुलसी के पहले या बाद युगों तक कोई रचनाकार जनता का इतना प्यार पा सका है ? बात–बात में तुलसीदास की पंक्तियाँ फूट पड़ना क्या आसान है ? तुलसी ने लोकमानस में गहरे धंस कर उन्हें जाना और समझा है। संत साहित्य का एकमात्र लक्ष्य था मनुष्यत्व की रक्षा करना। इसी लक्ष्य को पाने के लिए आजीवन साधना में लगे रहे। इनका सबसे अधिक बल मानव के अंतरूकरण के कॅथार्सिस पर है। स्वस्थ मन ही स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है। मनोरोगी के द्वारा निर्मित समाज रूग्ण और अपाहिज होगा। तुलसीदास कहते हैं – 'तुलसी देत सीख, सिखयो न मानत'। मनुष्य हमेशा दूसरों को सिखाता है। हर कसौटी पर खरा दूसरों को उतरना है। सिद्धांत दूसरों के लिए है। दोगली मानसिकता वाले लोगों के पास क्या कभी इतना समय होगा कि इन पंक्तिययों के मर्म को बूझने के लिए 'तीसरी आंख का निर्माण करें। कबीर कहते हैं – 'मुझसे बुरा न कोय' लेकिन ज्यों कि त्यों धर दीन्हीं चदरिया' यह भी तो कबीर ही हैं। तब कबीर क्या समझाना चाहते थे ? क्या उनकी बात को समझकर आचरणगत उपयोगिता सामाजिक प्रगति प्रक्रिया का महत्वपूर्ण पहिया हो सकता था, है या होगा। भक्तिकाल में एक संत कहता है – 'साधु जाने महासाधु। खल जाने महाखल'। आधुनिक काल में दूसरा संत कहता है – ''चरित्र को चरनेवाले पशुओं से सतर्क रहना चाहिए। जो बहुत सच बोलने की दुहाई देता है उससे बड़ा झूठा कोई नहीं।'' समूचा युग बीत गया भ्रम की टाटी उड़ाने में परन्तु संतो के ज्ञान की आंधी से ज्यादा मजबूत टिकाऊ भ्रम की टाटी रही इसीलिए आज सबसे बड़ा नैतिक कौन है ? जो दूसरों को जितनी ज्यादा जोर देकर अनैतिक कह दे। ऐसे लोगों के लिए संतों के पास अचूक अस्त्र है जो समान भोक्ता के लिए संबल भी कम नहीं है। मीरा और कबीर तुलसी पंक्तियाँ देखी जा सकती है।

अपने घर का परदा कर लीजै
मैं अबला बौराणी। –

मीरा

जाको रूचौ कहै सो, कछु कोई

– तुलसी

दूसरी जिस व्यक्तिगत कुप्रवृत्ति का संत समाज संहार करने का प्रयत्न कर रहा था वह था अहंकार। अहंकार व्यक्ति और व्यक्ति के बीच कभी इस तरह के मानवीय संबंध का निर्माण नही होने देगा जिससे स्वस्थ समाज का निर्माण हो। अहंकार वर्चस्व की इच्छा पैदा करता है और वर्चस्व अन्याय पैदा करता है। अहंकार नहीं मरेगा तो मनुष्यत्व मरेगा यह तय है। अहंकार का वध किया जाना जरूरी है। पर कैसे? क्यों यह समय है अपने अहंकार और दंभ को दूसरों पर जबस थोप कर संतोष पानेवालों का है। तब जीवन में शीश उतारे भई धरे' का मंत्र कैसे लौटेगा ? यह तय करना पडेगा। हर युग की अपनी प्रगतिशीलता कसौटी होती है। लेकिन इस कसौटी पर भी संत साहित्य हमसे अधिक आगे और अधिक सूझवाला सिध्द हो रहा है। संतों ने व्यक्ति स्वातंर्त्य और व्यक्ति अधिकार का संघर्ष छेड़ दिया। इस संघर्ष में रक्तपात की जगह नहीं थी। क्यों कि यह संघर्ष अपने समय का सपना महज प्रतिक्रिया नहीं था बल्कि विवके द्वारा तय किया गया वह रास्ता है था जिस पर चलकर अत्याचार, पीड़ा से मुक्त समाज का सपना साकार किया जा सकता था। पराधीन सपने हुँ सुख नाही' तुलसी की एक बहुत बड़ी चेतावनी थी जिसे पढ़कर सुन कर हमें सतर्क हो जाना चाहिए था। नहीं हुए। अब तक नहीं। सूरदास के काव्य में युगबोध पर रिसर्च करनेवालों तक की स्थापना है सूर उन अर्थों में सामाजिक नहीं थे। किन अर्थों में ? पता नहीं। आज का स्त्रीविमर्श, विचार, वाद, आक्रमण या प्रतिक्रिया जो भी कहें सूर की गोपियों के समक्ष बहुत बौना है। मुक्त, स्वतंत्र सत्ता रखनेवाली तथाकथित नैतिकता की धज्जियां उड़ाने वाली राजनीति और धर्म में सशक्त हस्तक्षेप करनेवाली और इन सबसे बढ़कर वह अमर बेल नहीं थी किसी की कमाई पर पलकर अपने स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर रही थी बल्कि वह दूध दही का व्यापार करती थी। आर्थिक धरातल पर समर्थ गोपियों को मुक्ति नेता की जरूरत कहाँ थी ? इन अर्थों में तो कृष्ण की भी नहीं हिन्दी साहित्य में आज का समय हाशिए की केन्द्रीयता का कहा जाता है परन्तु अपने अंतवि़रोधों विसंगतियों के बावजूद संत साहित्य में यही स्वर केन्द्रीय था और यही साहित्य की मुख्यधारा! 1381 में इग्लैंड के किसानों ने सामंतों के विरूध्द यह प्रश्न उठाते हुए विरोध किया था कि जब हम सभी को ईश्वर ने क्राइस्ट की अनुकृति के रूप में ही गढ़ा तब हमसे यह पशुओं जैसे व्यवहार क्यों? समूचे संत साहित्य में फैला यही 'क्यों ' आज भी अनुत्तरित है आज का कवि भी जब गांव को नगर के मुकाबले कम चालाक, धूर्त कपटी, षडयंत्री पाता है। सांप तुम तो सभ्य नहीं हुए तब सूर के समय तो यह भेद राई और पहाड़ का रहा होगा। गोपियाँ कहती हैं –

वे नागर मथुरा निरमोही, अंग – अंग भरै कपट।
हरि हैं राजनीति पढ़ आए।

संत साहित्य का राजनीति से क्या संबंध था ? 'संतन को कहाँ सीकरी सो काम।' जब सीकरी से काम नहीं तो भला सत्ता से क्या ? लेकिन बिना राजनीतिक समझ के विद्रूप व्यवस्था का विरोध नहीं किया जा सकता। और संत साहित्य सबके हित की बात करता है तो उससे दूर कैसे रह सकता है? सत्ता से स्वार्थ नहीं इसलिए चापलूसी नहीं, चापलूसी नहीं इसलिए उनके पास एक सहज न्याय की भाषा थी जिसे व्याकरण और अनुशासन के बल आर्जित नहीं किया जा सकता। वह न्याय की बोली नहीं बोल रहे थे बल्कि अन्याय की पथरीली जमीन पर स्वयं भाषा की धार पैनी होती जा रही थी –

राजा देश को बड़ो प्रंपची, रैयत रही उजारी।

क्या वाकई दुनिया से विमुख रहनेवाले जगत को मिथ्या समझने वाले संतो की वाणी है ये या फिर नई दुनिया गढ़नेवाले संत आचरण के क्रांतिकारी साहित्यकारों की। 'मुक्तिबोध कहते हैं आज' अच्छे – अच्छे रावण के घर पानी भरते हैं। वहाँ तुलसी का मनसबदारी से इनकार

करना। मीरा का राजा को मूर्ख कहना कितने बड़े नैतिक बल की मांग करता है।

तुलसी अब का होहिंगे, नर के मनसबदार
– तुलसी

मूरख जण सिंघासणा राजा, पंडित फिरता मारा।
– मीरा

सूर ने तो 'राजनीति का अर्थ ही छल, प्रपंच कपट और धूर्तता से लगाया है। 'कालियामर्दन, कंसवध, इंद्र की पूजा से इनकार सूर काव्य के तीन घटनाएँ कृष्ण चमत्कार कृष्ण महिमा की गाथा नहीं है बल्कि तानाशाही बनाम जनतंत्र की स्थापना है। इनके परिप्रेक्ष्य में ही सूरदास की राजनैतिक समझ को समझा जा सकता है। हम बार–बार पुनर्मूल्याकंन की बात करते हैं पर सच पूछिए तो अभी तक मूल्यांकन भी कहां हो पाया है पढ़े लिखे बौध्दिक वर्ग के बीच? अनपढ़ जनता के बीच हुआ है खूब हुआ है क्यों कि निष्कंप आस्था की जो पूंजी उनके पास है हमारे पास नहीं है। सूरदास साम्राज्यावदी नीति का विरोध करतें हैं क्यों वे जनपक्षधर कवि है और शक्ति के इस खेल पीस रही जनता का वाणी भी हैं।

द्वै नृप लरत प्रजा इंद्रीगति
सूर कौन यह नीति।

इतना ही नहीं 'राजनीति की रीति सुनौ हो, चरत बारिधर खेत' इसी रीति ने लोकतंत्र की धज्जियां उड़ा दी। लोकतांत्रिक व्यवस्था का वध लोकतंत्र के प्रतिनिधियों ने किया है व्यक्ति कब 'वैलेट पेपर' में तब्दील हो गया पता ही न चला। सूरदास ने शासन और सत्ता के केन्द्र मथुरा को यूंही काजर की कोठरी नहीं कह दिया होगा। निराला को 'पत्थर तोड़ती मजदूरनी' इलाहाबाद के पथ पर ही नहीं दिखनी थी। राजव्यवस्था तो ऐसी होनी चाहिए 'हर्षित भए गए सब 'शोका' इसीलिए सूरदास राज से नीति शब्द हटाकर 'धर्म' जोड़ते हैं। पटवारी अहंकारी है कपटी है झूठी बही लिखता है और अधर्म को ही धर्म बताता है और –

नैन अमीन अधर्मिनि कै बस, जहाँ को तहाँ ह्वयौ
दगाबाज कुतवाल काम रिपु सरबस लूटि लयौ।

सामंतों राजाओं, पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ सूर तुलसी, कबीर, मीरा नानक जिस तरह से खडे हैं न केवल खड़े हैं बल्कि जिस पारदर्शी भाषा में उनसे असहमति जता रहे हैं हमें वह भाषा उन्हीं के जमीन से लानी होगी और उन्हीं से उर्जा खींच कर भरना होगा अपने फेकड़े में ताजी हवा का बल ताकि हम भी कह सकें –

सूरदास ऐसी क्यों निभि हैं अंधधुंध सरकार।
'नहीं दरिद्र समदुख जग माहि'

भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ आज भी कृषि ही है। औद्योगीकरण के बावजूद मानसून फेल तो बजट फेल। अंबानियों टाटाओं सुव्रत रायों के बावजूद किसान लगातार आत्महत्या कर रहा है। किसानों की आत्महत्या लोकलाइज्ड फिनोमिना हो गया है। क्या जब विदर्भ में किसान आत्महत्या करता है तब मुंबई में आपको नींद नहीं आती ? कहने को तो आप इतने बडे सामाजिक है कि खुद को बार – बार बहुत सेंसटिव कहने से नहीं चूकते। और संत तो इस ढंग से सामाजिक भी नहीं है फिर भी मानवीय संवेदना ने इन्हें सारी जनता से जोडे जनता के दुखों के साथ इनकी गहरी साझेदारी है। मीरा गाती हैं जिसे केवल कृष्ण दीवानी ही समझा जाता है 'हरि हरो तुम जन की पीर,'। अकाल दुर्भिक्ष, से ग्रस्त समाज बेटी – बेटा बेच देने को विवश है बेरोजगारी का आलम यह है कि चिन्तातुर लोग एक दूसरे से यही प्रश्न कर रहे हैं – कहाँ जाइ का करी। मुक्तिबोध कहते हैं। –

कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह दूं
वर्तमान समाज चल नहीं सकता, पूंजी से
जुड़ा हदय बदल नहीं सकता।

युग पहले यह बात नानक कहते हैं

'जे रत लगै कपड़ा जामा होई पलीतु
जे रत पीवहि माणसा तिन किड निरमल चित'

यह पूंजीपति किसानों का रक्त पीते हैं। इनका चित्त कैसे निरमल हो सकता है। आर्थिक व्यवस्था की जड़ मजबूत करने वाले दो प्रमुख घटक हैं एक कर्मठता दूसरी अतिसंग्रह की वृत्ति से दूर रहना। इन्ही दो आधारों पर संतों का बल है। जाति के साथ साथ वर्गभेद के लिए भी संघर्ष कर रहे थे संत। वह भिक्षा उपहार पर जीने वाले साधुओं पर भी लानत भेजते थे! तुलसी घर बैठकर की जाने वाली भक्ति को महत्व नहीं देते –

घर कीन्हे घर जात है, घर छाडे घर जाई।
तुलसी घर बन बीच ही रह प्रेमपुर हाई।

अधिक पूंजी बुराइयों की जड़ है गोपियों की सारी व्यंजना ही किसानों की, गरीबों की आर्थिक सामाजिक विडंबना से उत्पन्न हुई है –

लरि – मरि झगरि भूमि कछु पाई, जस अपजस बितई
अब लौं सूर कहति हैं उपजी सब ककरी करूई।

यही किसान जीवन का सत्य था। संत कर्तव्य विहीन अधिकार बोध को आर्थिक पतन का मूल मानते हैं। वे सदा सहज जीवन पर बल देते हैं। माओ के प्रभाव में विलासिता से दूर रहने का चीन के बुध्दिजीवियों का संकल्प ही चीन के आर्थिक विकास की बुनियाद बना। पर संतों की इस सीख का हम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इक्कसवीं सदी के संत तुकड़ो जी महाराज का तो यहाँ तक सुझाव है कि हर पैसे वाले को कम से कम एक अनाथ को शिक्षित करके उद्यमी बनाने का संकल्प लेना चाहिए। भारत में इनकी बातों का महत्व किताबी पन्नों के बाहर निकल कर माना गया होता तब शायद आर्थिक संतुलन इस तरह न गड़बड़ाता खैर अब तो स्थिति और भी खराब है उदारीकरण व्यवस्था ने तो पूरी तरह भारत को डूबो देने की कसम खाई है।

मैं कहता सुरझावनवारी।

महाभारत ने बहुत पहले यह घोषणा कर दी थी कि जो धर्म दूसरे धर्म को बाधित करता है वह धर्म नहीं है कुधर्म है। सच्चा धर्म अविरोधी होता है। धर्म का इतना सहज, मासूम, पवित्र रूप हमारी समझ में आज तक क्यों नहीं आया लेकिन महाभारत ग्रंथ निर्माता बीते दिन की बात करते हैं। आउटडेट है और आधुनिक प्रगतिशील परमाणु निर्माता क्या करते हैं। कबीर की छरू सौवी

जयंती पर जम्मू में अंतरराष्ट्रीय सीमा से सटे अखनूर क्षेत्र के कबीर पंथियों का संहार करते हैं।

भेद की दीवार इतनी चौड़ी कर दी गई है कि नरसंहार से कम या परमाणु युध्द की संभावना से कम किसी चीज का जिक्र करने लायक तो रह ही नहीं गया है। पर कबीर कहते हैं।

कबीर इस संसार को समझाऊँ मैं कै बार
पूँछ जो पकडे भेद का उतरा चाहै पार।

भेद की पूंछ पकड़ कर इंसानियत तक नहीं पहुंचा जा सकता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं ''एक दल जिसे धर्म समझता है दूसरा नहीं समझता इस वैषम्य को ध्यान में रखकर ही प्रेम और सौहार्द का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए। दही में जितना भी दूध डाला जाय दही ही होता जायेगा' शंकाशील हदय में प्रेम की वाणी भी शंका ही उत्पन्न करती है। सभी मजहब को एक साथ जोड़ सके। एक दूसरे के प्रति स्वतरू बंधुभाव जागृत हो सके। वही धर्म है। वह धर्म कुछ और नहीं बस प्रेम है। इसमें कोई जटिलता नहीं। इसलिए कबीर सारी उलझन को सुलझा सकने में समर्थ हैं बहुत बाद में चलकर रवीन्द्रनाथ टैगोर जी ने भी यही कहा था।

ओदंर कोथाय धांदा लागे।
तेमार कोथा आमि बुझि
तेमार आकाश, तोमार बतास
एइ व सवइ सोजा सुजि।।

निष्कर्ष

संत राबिया ने एक पवित्रग्रंथ से 'शैतान से नफरत करो' कि पंक्ति को काट दिया। पूछने पर उनका जवाब था। मैं प्रेम को समझ गई हूँ मेरे पास घृणा के लिए कोई जगह नहीं है। 'एरिक फ्रार्म' ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा कि प्रेम में श्रम, दूसरे व्यक्ति की चिंता उसके प्रति आदर तथा ज्ञान के सभी तत्व विद्यमान है। मानव समाज का धर्म परिपक्व प्रेम है।' संत कबीर के अनुयायियों के खिलाफ हिंसक अभियान चलाते हैं। कबीर के साखी गायकों का बहिष्कार करते हैं और यह सब धर्मार्थ करते हैं क्यों कि उनके धर्म को कबीर से आज भी खतरा हैं। क्योंकि सुरझावन हारी कह देंगे तो हिंसा का तांडव कैसे रचा जायेगा। कल तक जो धर्माडंबर मठो– मंदिरों तक सीमित था और बहुत करके सामाजिक जीवन के कुछेक पहुलओं को नियंत्रित करता था अब सत्तासीन होकर निराला की भाषा में खल खल हँस रहा है! हिंसा का तांडव प्रायोजित करने की अपनी क्षमता का परिचय दे चुका है। धर्म की विसंगति और भ्रम को रेखाकिंत करते हुए पाश कहते हैं–

मुझसे बताया गया कि झूठ बोलना पाप है
शिक्षा मनुष्य की तीसरी आँख है।
चोरी करना बुरा है।
सभी मनुष्य बराबर होते हैं
मैं इन सभी वाक्यों के अजीबोगरीब आपसी संबंधों
के सामने सहम गया।

संत साहित्य की बुनियाद ही प्रगतिशील है। उसमें अलग से प्रगतिशीलता क्या ढूढ़ना ? और कौन ढूढ़े ? वे जिनके लिए कबीर कहते हैं –

पढ़ि – पढ़ि के पत्थर भया, लिखि लिखि भया जुं र्जु इंट
कहै कबीरा प्रेम की लगी न एकों छींट

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल*
2. *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह*
3. *हिंदी गद्य साहित्य का इतिहास, रामचंद्र तिवारी*
4. *कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी*
5. *onlinehindijournal.blogspot.in*
6. *नया ज्ञानोदय, फरवरी 2018*
7. *हंस, जुलाई 2019*